E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
https://multiresearchjournal.theviews.in

Received: 02-01-2025
Accepted: 06-02-2025
Published: 10-04-2025

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 3; Issue 2; 2025; Page No. 545-547

भारतीय ज्ञान परंपरा: सत्ता और वर्चस्व

डॉ. संतोष कुमार सिंह

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18359333

Corresponding Author: डॉ. संतोष कुमार सिंह

सारांश

यह शोधपत्र भारतीय ज्ञान परंपरा को सत्ता और वर्चस्व के विमर्श से पृथक करते हुए उसे संवाद, बहुलता और पुनर्रचनात्मकता की जीवंत परंपरा के रूप में समझने का प्रयास करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुकेंद्रिक रही है, जिसमें शास्त्र और लोक, प्राचीन और आधुनिक, परंपरा और नवाचार के बीच निरंतर संवाद बना रहा है। रामकथा की विविध पुनर्रचनाएँ, भक्ति आंदोलन की समतामूलक चेतना, तथा आधुनिक काल में गांधी, प्रेमचंद और निराला जैसे चिंतकों का हस्तक्षेप इस परंपरा की गतिशीलता को स्पष्ट करता है। यह परंपरा ज्ञान को वर्चस्व का उपकरण नहीं, बल्कि विवेक, संवेदना और नैतिक समन्वय का माध्यम मानती है। समकालीन सूचना-प्रधान समाज में, जहाँ ज्ञान को सूचना में समेट दिया गया है, भारतीय ज्ञान परंपरा आलोचनात्मक दृष्टि, अनुभव की स्वतंत्रता और मानवीय समता का वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करती है। शोधपत्र यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा मूलतः संघर्ष और संवाद की परंपरा है, जो सत्ता के बजाय मनुष्यता और साझेदारी को केंद्र में रखती है।

मूल शब्दः भारतीय ज्ञान परंपरा, सत्ता और वर्चस्व, बहुलता, संवाद, पुनर्रचनात्मकता, लोक और शास्त्र, भक्ति परंपरा, ज्ञान बनाम सूचना, समन्वय, मानवतावाद

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा को यदि उसके मूल स्वभाव में समझा जाए, तो वह किसी एक सत्ता, एक भाषा, एक संस्कृति या एक विचारधारा की परिधि में सीमित नहीं दिखाई देती। यह परंपरा मूलतः बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुपरंपरागत रही है। किंतु यह बहुलता बिखराव या असंपृक्तता का संकेत नहीं देती, बल्कि एक ऐसी संवादात्मक संरचना को प्रकट करती है जिसमें विभिन्न परंपराएँ परस्पर संघर्ष, संवाद और समन्वय के माध्यम से एक-दूसरे को निरंतर समृद्ध करती रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की यह विशेषता उसे उन ज्ञान प्रणालियों से भिन्न बनाती है जो एकरूपता, केंद्रीकरण और वर्चस्व की ओर प्रवृत्त रही हैं।भारतीय परंपरा में 'परंपरा' स्वयं एक स्थिर इकाई नहीं है। वह निरंतर अद्यतन होती हुई, स्वयं को पुनर्रचित करती हुई आगे बढ़ती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह प्रसिद्ध रूपक–कि परंपरा दो पैरों पर चलती है, जहाँ एक पाँव परंपरा का होता है और दूसरा नवाचार का–भारतीय ज्ञान दृष्टि को अत्यंत सटीक रूप में व्याख्यायित करता है। यदि दोनों में से कोई एक पाँव ठहर जाए, तो परंपरा या तो जड़ हो जाती है या अपनी पहचान खो देती है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन और आधुनिक, शास्त्र और लोक, अनुभव और विवेक–इन सबके बीच एक जीवंत संतुलन स्थापित करती है।भारतीय ज्ञान

परंपरा को समझने में प्राच्यविदों का भी एक ऐतिहासिक योगदान रहा है। उन्होंने भारतीय ग्रंथों, भाषाओं और परंपराओं का अध्ययन कर यह बताया कि भारत क्या था और किस प्रकार की ज्ञान संरचनाएँ यहाँ विकसित हुई थीं। यद्यपि उनके अध्ययन औपनिवेशिक सत्ता-संरचना से पूरी तरह मुक्त नहीं थे, फिर भी उन्होंने 'ग्रेट ट्रेडिशन' और 'लिटिल ट्रेडिशन' जैसे अवधारणात्मक ढाँचों के माध्यम से यह संकेत अवश्य दिया कि भारतीय ज्ञान एकरेखीय नहीं, बल्कि बहुकेंद्रिक रहा है। समस्या तब उत्पन्न हुई जब पाश्चात्य सत्ता ने इन भिन्नताओं को संवाद के बजाय विभाजन की नीति में बदल दिया और ज्ञान को शासन के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया।वास्तव में भारतीय ज्ञान परंपरा बहुकेंद्रिक रही है। इसमें लोक साहित्य, वाचिक परंपराएँ, स्थापत्य कला, मुद्रण कला, वास्तुशास्त्र, पांडुलिपियाँ और आर्काइवल ज्ञान–सभी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ज्ञान केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लोक स्मृति, गीत, कथा, मिथक और जीवन व्यवहार के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होता रहा है। वाचिक परंपरा इस ज्ञान संरचना का केन्द्रीय आधार रही है, जहाँ ज्ञान का मूल्य उसके उपयोग, नैतिकता और सामुदायिक हित से निर्धारित होता है, न कि केवल उसके बौद्धिक प्रदर्शन से।भारतीय विद्वानों–हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह और रामविलास शर्मा–ने आधुनिक काल में इस परंपरा को पुनः संवादात्मक रूप में स्थापित करने का कार्य किया। उन्होंने खंडन-मंडन की परंपरा को आधुनिक आलोचना से जोड़ा और यह स्पष्ट किया कि भारतीय ज्ञान दृष्टि मूलतः तर्क, विवेक और बहस की परंपरा रही है। "वादे वादे जायते तत्वबोधः" की उक्ति भारतीय ज्ञान परंपरा के इसी आत्मालोचनात्मक और संवादशील स्वभाव को रेखांकित करती है।राधाकुमुद मुखर्जी ने 'हिंदू सभ्यता' में लिखा है कि भारतीय सभ्यता में विभिन्न संप्रदायों, विश्वासों और मतों के लोग वाणी के सहारे संघर्ष करते थे, खंडन-मंडन करते हुए विचरण करते थे। यही लोग वास्तव में परंपरा का निर्माण करते थे–जो विवेकवान थे, विचारशील थे, और जीवन तथा समाज से गहरे जुड़े हुए थे। यहाँ संवाद केवल बौद्धिक क्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक दायित्व था।इस संवाद परंपरा को बुद्ध ने भी स्वीकार किया। अवंतिका और वज्जिराज के शासकों से संवाद करते हुए उन्होंने जिस स्वतंत्र विचार-परंपरा की प्रशंसा की, वह भारतीय ज्ञान परंपरा के लोकतांत्रिक चरित्र को उजागर करती है। आधुनिक काल में यही परंपरा गांधी के यहाँ दिखाई देती है, जहाँ किसान, मज़दूर, स्त्री और जनजाति–सभी के साथ संवाद स्थापित कर वे आंदोलन को नैतिक आधार प्रदान करते हैं।साहित्य में यही विवेक और संवाद प्रेमचंद के यहाँ दिखाई देता है। उनके पात्र–धनिया, सूरदास आदि–लालच, शोषण और अन्याय का प्रतिरोध करते हैं। राजनीति में गांधी और साहित्य में प्रेमचंद–दोनों भारतीय ज्ञान परंपरा की उसी धारा को आगे बढ़ाते हैं जो त्याग, निर्भीकता और नैतिक साहस पर आधारित है।भारतीय ज्ञान परंपरा में 'येनो भद्राः क्रन्तवो यन्तु विश्वतः' का मंत्र ज्ञान के प्रवाह को चारों दिशाओं से आने देने की उद्घोषणा करता है। यह परंपरा ज्ञान को संकुचित नहीं करती, बल्कि समन्वयात्मक बनाती है। यहाँ ज्ञान हेज़मनी को नहीं, बल्कि सामंजस्य को महत्व देता है–ठीक वैसे ही जैसे संगीत में विभिन्न सुरों का तालमेल आनंद की सृष्टि करता है, न कि पीड़ा या असमानता।भारतीय समाज बहुरंगी रहा है, जबकि यूरोप और अमेरिका की परंपराएँ अपेक्षाकृत एकरूपी रही हैं–धर्म, खान-पान और जीवनशैली में। यदि उनकी परंपरा दीवारों पर आधारित है, तो भारतीय परंपरा खिड़कियों पर–जहाँ से संवाद, प्रकाश और हवा आती है। यह परस्पर साझेदारी और मनुष्यता की परंपरा है, जिसे रवींद्रनाथ टैगोर ने भी स्वीकार किया।

मीरा, अक्का महादेवी और महाश्वेता देवी को एक साथ शोध का विषय बनाकर देखने पर भारतीय परंपरा की अंतरसांस्कृतिक आवाजाही स्पष्ट होती है। यहाँ भिन्नता में अभेद देखा जा सकता है। पुनर्रचनात्मकता और निरंतरता भारतीय ज्ञान परंपरा का अभिन्न अंग हैं। रामकथा की परंपरा–वाल्मीकि, भवभूति, कम्बन, तुलसी–इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। कथ्य एक है, किंतु दृष्टि भिन्न है।आधुनिक काल में निराला इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। कम्बन और कृतवास की रामायण से जुड़ते हुए वे निराश राम को पुनः संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। यह वही समय है जब दूसरा विश्व युद्ध, महा मंदी और औपनिवेशिक दमन अपने चरम पर था। गांधी के "करो या मरो" और "भारत छोड़ो" आंदोलन के साथ निराला की पंक्ति–"शक्ति की करो मौलिक कल्पना"–एक ही चेतना की अभिव्यक्ति है।भक्ति आंदोलन, रामानंद के माध्यम से दक्षिण से उत्तर का समन्वय करता है। नानक, कबीर, रैदास, गांधी–सभी इसी परंपरा में आते हैं। कबीर का अमरदेश और रैदास का बेगमपुर समता आधारित समाज की कल्पनाएँ हैं। तमिल कवि भारती ज्ञान को ईश्वर घोषित करते हैं, और दारा शिकोह के अनुवाद भारतीय ज्ञान को विश्व संवाद में प्रवेश कराते हैं।फिर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि भारतीय परंपरा में सब कुछ स्वीकार्य नहीं है। चयन, विवेक और आलोचना की

आवश्यकता बनी रहती है। 'अन्य' और 'अनन्य' की दृष्टि छोड़कर समता के विस्तार की बात करनी होगी। बुद्धि, विवेक, विचार और संवेदना–इनका एक साथ होना आवश्यक है।आज हम सूचना-प्रधान समाज की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ ज्ञान और सूचना का अंतर मिटता जा रहा है। रटंत संस्कृति, बाज़ार और राजनीति के दबाव में अनुभव की स्वतंत्रता बाधित हो रही है। इस स्थिति में भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर लौटना आवश्यक है–जहाँ सुनना, समझना और मौन भी ज्ञान का हिस्सा है। अज्ञेय के शब्दों में, मौन को अभिव्यक्त होने देना होगा। ग्रीक दार्शनिक डायोजनीज़ का यह कथन कि दिन में लालटेन लेकर मनुष्य को ढूँढना पड़ता है–आज के संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो जाता है।भारतीय ज्ञान परंपरा अंततः संघर्ष और संवाद की परंपरा है–सत्ता और वर्चस्व से इतर, समता और मनुष्यता की ओर अग्रसर होती है ।

संदर्भ

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद – परंपरा और आधुनिकता
2. मुखर्जी, राधाकुमुद – हिंदू सभ्यता
3. शर्मा, रामविलास – भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश
4. सिंह, नामवर – छायावाद
5. प्रेमचंद – साहित्य का उद्देश्य
6. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी – राम की शक्ति पूजा
7. गांधी, मोहनदास करमचंद – हिंद स्वराज
8. अज्ञेय – असाध्य वीणा
9. भारती, सुब्रह्मण्यम – चयनित कविताएँ
10. दारा शिकोह – सिर्र-ए-अकबर

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.